ओ३म्

पितृयज्ञ :

श्राद्ध - तर्पण

कुर्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।
पयो मूल फलैर्वापि मुन्यन्नैश्चापि सर्वशः॥

मनु० ३।८२

भावार्थ :—

पितरों को प्रीति पूर्वक बुलाकर अन्न, जल, दूध, मूल-फल इत्यादि से प्रति दिन श्राद्ध करे, सत्कार पूर्वक उनकी सेवा करे।

लेखक :

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

आचार्य, आर्य समाज, कलकत्ता।

१६, विधान सरणी, कलकत्ता-६

तृतीय संस्करण
१९८२

७५ पैसे प्रति

Scanned with CamScanner

प्रकाशकीय—

सत्य सनातन वैदिक धर्म के पुनर्जन्म एवं कर्म फल के सिद्धांतों को साधारण से साधारण भारतीय जानता और मानता है। किन्तु फिर भी वेद शास्त्र सम्मत पितृयज्ञ से उदासीन होकर लोग युक्तिहीन मृतक श्राद्ध की अन्ध-परम्परा का पालन किये जा रहे हैं।

वेद-शास्त्र सम्मत पितृयज्ञ के अन्तर्गत प्रत्येक वैदिक धर्मी गृहस्थ के लिए आवश्यक कर्त्तव्य बतलाया गया है कि वह विद्यमान माता-पिता, गुरु-आचार्य, देवपुरुषों एवं वृद्धजनों को अन्न जल इत्यादि से प्रतिदिन अपनी सेवा-श्रद्धा द्वारा तृप्त करें।

पितृयज्ञ की इसी उदात्त भावना की स्वस्थ परम्परा को जागृत करने के उद्देश्य से "पितृयज्ञ—श्राद्ध तर्पण" का तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, जिसकी मांग आर्य जगत् में कई वर्षों से निरन्तर हो रही थी।

आशा है, इसके प्रचार-प्रसार में हमें सभी विचारशील लोगों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल

मन्त्री, आर्य समाज, कलकत्ता।

आचार्य धर्मधर आर्य

— 9029421718

Scanned with CamScanner

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

ओ३म्

पितृयज्ञ :

श्राद्ध-तर्पण

भारतीय-जीवन परम्परा में, ऋषि-मुनियों की संस्कृति में पाँच महायज्ञों का बड़ा महत्त्व है। इनका महत्त्व इनके नाम से ही प्रकट होता है, इन्हें 'महायज्ञ' नाम से पुकारा जाता है। पौर्णमास से लेकर अश्वमेध पर्यन्त किसी यज्ञ को यह सम्मान नहीं मिला, जो इन नित्य किये जानेवाले यज्ञों को मिला है। महर्षिस्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने तो, इनकी उपयोगिता को ही विचार करके 'पञ्चमहायज्ञविधि' नामक एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखी है। पञ्च महायज्ञों की महत्ता को ही ध्यान में रखकर मनु महाराज कहते हैं :—

"पञ्चैतांस्तु महायज्ञान् यथाशक्ति न हापयेत्।"

अर्थात्—इन पांच महायज्ञों को तो यथाशक्ति नहीं त्यागना चाहिए; जहां तक अपनी शक्ति पहुंचे, इन महायज्ञों को छोड़ना नहीं चाहिए; इन महायज्ञों का पूरे सामर्थ्य से पालन करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

ये पांच महायज्ञ कौन-कौन से हैं ?

(१) ब्रह्मयज्ञ—सन्ध्या-स्वाध्याय
(२) देव यज्ञ—अग्निहोत्र
(३) पितृयज्ञ—माता पिता, पूर्व पुरुषों की सेवा
(४) अतिथि यज्ञ—अतिथि की पूजा सेवा
(५) बलिवैश्वदेव यज्ञ—विश्वदेव का सम्मान

"पितृ यज्ञ" क्या है ?

स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्च महायज्ञविधि' में पितृयज्ञ' के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से लिखा है—

"अथ तृतीयः पितृयज्ञः। तस्य द्वौ भेदौस्तः—एकस्तर्पणाख्यो द्वितीयः श्राद्धाख्यश्च। तत्र येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितृश्च तर्पयन्ति सुखयन्ति तत् 'तर्पणम्' तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियसे तत् "श्राद्धम्' वेदिव्यम्॥"

भाषार्थ—"अब तीसरा महायज्ञ कहते हैं। उसके दो भेद हैं—एक तर्पण, दूसरा श्राद्ध। 'तर्पण' उसे कहते हैं, जिस कर्मसे विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुख युक्त करते हैं। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है, सो 'श्राद्ध' कहाता है।

Scanned with CamScanner

तर्पण के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है— कि जिस क्रिया से अपने बड़े पूज्य माता पिता गुरु आचार्य तृप्त होते हैं—सन्तुष्ट होते हैं, वह तर्पण की क्रिया है। एक विद्यार्थी बड़ा सच्चरित्र, मृदु मधुर भाषी, दूसरों के सुख-दुःख सुविधा-असुविधा का ध्यान रखने वाला है, घर में उसके माता पिता आदि परिवार के बड़े लोग उससे प्रसन्न रहते हैं, उसके आचरण व्यवहार से सन्तुष्ट रहते हैं। विद्यार्थी की भावना और उसके आचरण से उसके अध्यापक लोग सन्तुष्ट रहते हैं। उसका अध्ययन, उसका परीक्षाफल घर वालों को और अध्यापकों को पूर्ण सन्तोष देता है। विद्यार्थी का यह आचरण तर्पण है, इससे सारे सम्बन्धित व्यक्ति तृप्त होते हैं। एक दूसरा विद्यार्थी युवक है। वह महाझगड़ालू, पढ़ने लिखने से कतराने वाला, परीक्षा में नकल करे या असफल हो। जहाँ भी उस विद्यार्थी की चर्चा होती है, माता पिता को लज्जा से शिर झुका लेना पड़ता है। ऐसे पुत्र से माता पिता को समाज में लज्जित होना पड़ता है। यह यदि लाखों मन पानी उलीचे और 'पितरस्तृप्यन्ताम्' का पाठ करे तो इससे क्या होना है? यह सारी तर्पण क्रिया व्यर्थ है।

सूक्तिकार कहते हैं—

"अजातमृत मूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौवरम्।
यतस्तौ स्वल्प दुःखाय यावत्जीवं जडो दहेत्।"

Scanned with CamScanner

इसका आशय हुआ कि तीन प्रकार के पुत्र होते हैं—(१) अजात, जो पैदा ही नहीं हुए (२) मृत, जो पैदा होकर मर गये और (३) मूर्ख। इन तीनों में अजात और मृत कुछ ठीक हैं क्यों कि उनके कारण कभी-कभी थोड़े समय के लिए कष्ट होता है। किन्तु, मूर्ख, अशिष्ट पुत्र सारे जीवन जलाता रहता है। वह हर समय कोई न कोई समस्या मां बाप के सामने लाता ही रहता है। जिस पुत्र ने सारे जीवन मां बाप को जलाया, तड़पाया है, उसके पानी उलीचने से माता पिता का तर्पण नहीं होता।

पुत्र का एक धर्म यह भी है कि माता पिता के अधूरे काम को पूरा करे अथवा माता-पिता के काम को आगे बढ़ावे। एक उदाहरण देखिए—

किसी श्रेष्ठी ने कलकत्ता जैसे नगर में एक धर्मशाला बनवाई। बड़ा सुन्दर प्रबन्ध किया, यात्रियों की सुविधा की, व्यवस्था की। समय बीतता गया और पिता की धार्मिक बुद्धि ने जोर लगाया तो घर का, व्यवसाय का भार अपने पुत्रों पर छोड़ कर वानप्रस्थ आश्रम में, हरद्वार में आनन्द से रहने लगे।

इधर योग्य बाप के योग्य बेटे। घर में धार्मिकता का, सत्संग का वातावरण। पुत्र धार्मिक रुचि के सुयोग्य, कार्य-कुशल। पुत्रों ने व्यवसाय भी खूब बढ़ाया, धन कमाया, व्यवसायी संसार में परिवार का सम्मान बढ़ गया। पुत्रों ने

Scanned with CamScanner

धर्मशाला की व्यवस्था में भी सुधार किया। आने वाले यात्रियों के भोजन निवास आदि की सुन्दर व्यवस्था हो गई। यात्री धर्मशाला में भोजन भी पाने लगे, बिस्तरा भी पाने लगे। स्वच्छता-व्यवस्था में काफी सुधार कर दिया गया। पुत्रों ने धर्मशाला में सायं प्रातः सत्संग की भी व्यवस्था कर दी।

एक चार पाँच यात्रियों का दल इस धर्मशाला में रहकर इधर-उधर यात्रा करता हरद्वार भी जा पहुंचा। उनके मन में उस श्रेष्ठी के दर्शनों की लालसा स्वाभाविक ही थी जिसके पुत्रों की व्यवस्था में वे कलकत्ता की धर्मशाला में रह गये थे। श्रेष्ठी से मिलने पर उन्होंने उसे बधाई दी। कहने लगे, सेठ जी! आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। भगवान् जिसे धन पुत्र दें तो आप की तरह। हम कलकत्ता में आपकी धर्मशाला में थे।

श्रेष्ठी ने पूछा—व्यवस्था तो ठीक है?

यात्रियों ने कहा—घर से भी अधिक अच्छी व्यवस्था है। घर से भी अधिक आराम है। भोजन और बिस्तरा भी मिला। सायं प्रातः सत्संग भी होता है। बड़ा आनन्द रहा। आपके पुत्र सारी व्यवस्था स्वयं करते हैं। एक बार रोज देख आते हैं, सब की संभाल कर लेते हैं।

जिस समय यात्री यह समाचार सुना रहे थे, उस समय श्रेष्ठी का रोम-रोम पुत्रों के स्नेह से पुलकित हो रहा था। स्नेह से द्रवीभूत पिता का रोम रोम पुत्र के लिये आशीर्वाद की वर्षा कर रहा था।

Scanned with CamScanner

यह, पुत्र ने पिता का तर्पण किया और पुत्र के इसी प्रकार के आचरण से माता-पिता को तृप्ति होती है। यही वास्तविक तर्पण है।

श्राद्ध के सम्बन्ध में एक प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

"कुर्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्यः प्रीतिमावहन्"

अर्थात्—पितरों के लिए बड़े प्रेम से नित्यप्रति श्राद्ध करना चाहिए।

श्राद्ध और तर्पण कुछ ऐसे कर्म नहीं है जिन्हें वर्ष में केवल एक दो दिन किसी विशेष अवसर पर किसी मास विशेष या पक्ष विशेष में किया जाय। ये तो ऐसे कर्म हैं, जिन्हे नित्य करना चाहिए। अपने माता, पिता, गुरु आचार्य, वृद्धजनों की नित्य ही सेवा करनी चाहिए। वे स्त्री पुरुष धन्य हैं, जिन्हें अपने वृद्धों की सेवा का अवसर प्राप्त हो। जितने दिन माता-पिता, गुरु-आचार्य अन्य वृद्धजनों का जीवन है, उतने दिन इस पुण्य कर्म से अपने को वञ्चित नहीं करना चाहिए। इन देव पुरुषों और देवी स्त्रियों का जीवन एक न एक दिन समाप्त होगा ही—

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः"

जो उत्पन्न हुए हैं, वे इस शरीर को छोड़ेंगे ही। जब उनकी मृत्यु हो जायगी, जब वे हमसे अलग हो जायेंगे, हमें छोड़कर चले जायेंगे, उसके पश्चात् हम चाहे जितनी चेष्टा करें, फिर

Scanned with CamScanner

उनकी सेवा नहीं कर सकते। फिर उनकी सेवा का अवसर ही कहाँ है ? पीछे तो माता-पिता आदि की याद आती है, अपनी भूलों के कारण मन में एक टीस उठती है। उस समय सेवा करने की इच्छा भी हो तो मनुष्य क्या करे ? माता पिता गुरुजन तो सामने है नहीं, जिनकी सेवा से अपना जीवन सफल बने। कई लोग अपने दिवंगत जनों के मृत्यु-दिवस या तिथि पर ब्राह्मणों को खिलाते हैं और इसे ही श्राद्ध समझते हैं। मृतक के लिए उसकी मृत्यु के पीछे श्राद्ध करना, ब्राह्मण खिलाना उन्हें दान आदि देना, और विशेष रूप से इस भावना से कि यह खिलाया हुआ, दिया हुआ, सब कुछ उस मृत व्यक्ति के भोग के लिए पहुंच गया है, यह अपने को धोखा देना है।

जबतक अपने वृद्ध जीवित हैं, हर प्रकार से उनकी सेवा करनी चाहिए। मनुस्मृति में एक श्लोक आता है—

"अभिवादयेद् वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम्।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात्॥"

मनु० ४। १५४

महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने इसको इस प्रकार समझाया है—

"सदा विद्यावृद्धों और वयोवृद्धों को नमस्ते अर्थात् उनका मान्य किया करें। जब वे अपने समीप आवें, तब उठकर

Scanned with CamScanner

मान्यपूर्वक ले (जाकर) अपने आसन पर बैठावे, और हाथ जोड़कर आप समीप बैठे (और) पूछे, वे उत्तर देवें और जब जाने लगें तब थोड़ी दूर पीछे-पीछे जाकर नमस्ते कर विदा किया करे और वृद्ध लोग हरबार निकम्मे जहाँ-तहां न जाया करें।"

हमें, अपने वृद्धों के सत्कार करने में, अपने जीवन का बड़ा भारी लाभ मिलता है, बहुत दूर तक जीवन सफल हो जाता है।

जो अपने वृद्धों की, अपने गुरुजनों की सेवा करते हैं, उनका अभिवादन करते हैं, उनका जीवन सफल और सुखी हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक श्लोक दर्शनीय है—

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥"

अर्थात्—जो अभिवादनशील होते हैं, जो अभिवादन करना सम्मान करना, अपने स्वभाव का अंग बना लेते हैं, ऐसे अभिवादनशीलों के और जो वृद्धों के उपसेवी, अर्थात् समीप से सेवा करनेवाले होते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि जिन्हें अपनी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि करनी हो, उन्हें अन्य कर्त्तव्य कर्मों के साथ दो काम अवश्य करने चाहिएँ—

१—अभिवादनशील बनना, अर्थात् अभिवादन करने का, सम्मान करने का अभ्यासी बन जाना, इन्हें अपने स्वभाव का अंग बना लेना।

२—नित्य प्रति वृद्धों का उपसेवी बने रहना; अर्थात् नित्य प्रति समीप से उनकी सेवा करते रहना।

यहां "उपसेवी" शब्द पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सेवा दो प्रकार से हो सकती है—

१—दूर से सेवा की व्यवस्था करा देना। माता-पिता, गुरुजनों, वृद्धों के लिए, उनकी सेवा के लिए, उनकी देखभाल के लिए नौकर रख देना; रुपये भेजा करना; नर्स और डाक्टर रख देना; यह दूर की सेवा है; दूसरों से सेवा कराना है। इसकी भी व्यवस्था होनी चाहिए।

२—उपसेवा—अर्थात् समीप से सेवा करना। समीप से सेवा करने का अर्थ है निज में, स्वयम् सेवा करना। किसी नौकर-नर्स पर सेवा का कार्य न छोड़कर स्वयं उसे करना।

वृद्धजनों को उपसेवा की आवश्यकता विशेष रूप से रहती है। नौकर या वेतनभोगी जब सेवा करता है तो उसमें स्नेह, आत्मीयता; श्रद्धा आदि की मात्रा बहुत कम होती है। उसने बिस्तरा बिछाया या टेबुल कुर्सी साफ की, सुराही में पानी भरा या ग्लास में उंडेल कर किसी वृद्ध को दिया, उसकी भावनाओं में बहुत अन्तर नहीं आता। किन्तु यही सेवा जब हम स्वयं करते हैं तो उसमें बड़ा अन्तर आ जाता है। वृद्ध, पूज्य, उपसेव्य की भावनावों में भी, उनके सन्तोष में, सेवा से प्राप्त उनकी प्रसन्नता में बड़ा अन्तर आ जाता है। किन्तु इससे भी अधिक अन्तर पड़

जाता है सेवा करनेवाले के आनन्द, सन्तोष और भावना में। अपने वृद्ध माता-पिता, गुरु; आचार्य आदि की सेवा में नौकरो के अतिरिक्त जब हम स्वयम् लगते हैं तो उन्हें तो अधिक सन्तोष मिलता ही है, अधिक आनन्द भी मिलता है; हमें भी अधिक सन्तोष और आनन्द मिलता है। ग्लास भी वही है, पानी भी वही है। किन्तु जब यही पानी पुत्र, पुत्रवधू, पौत्र पौत्री आदि देते हैं, तो प्यास की तृप्ति बढ़ जाती है। उस पानी में सेवा करने वाले की भावना स्वतः स्वाभाविक रूप से ही मिल जाती है। दोनों ओर आनन्द और सन्तोष बढ़ जाता है।

इसका एक सत्य घटना से उदाहरण देते हैं। आर्य-समाज के एक पुराने संन्यासी स्वामी ध्रुवानन्दजी सरस्वती थे। संन्यास से पूर्व इनका नाम राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री था। सचमुच कई देशी रियासतों के राजाओं के ये गुरु थे। राज गुरुजी के गुरुजी थे 'वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज'। कभी किसी राजा ने अपने गुरु के गुरु अर्थात् स्वामी सर्वदानन्दजी को आमन्त्रित करने की इच्छा प्रकट की। राजगुरुजी ने अपने गुरुजी से प्रार्थना की और वीतराग स्वामो सर्वदानन्दजी ने अपने शिष्य की इच्छा पूर्ण की निमन्त्रण पर आ गये।

गर्मी के दिन थे। शाम गई रात हो गई थी, सायंकाल के भोजनादि से सब निवृत हो चुके थे। राज गुरु धुरेन्द्र शास्त्रीजी का नियम था कि जब भी गुरुजी के पास रहते, रात्रि में सोने जाने

Scanned with CamScanner

से पूर्व अपने गुरुजी के पांव दबाया करते थे। अपने उसी नियम के अनुसार राजगुरुजी अपने गुरुजी के चरणों में उपस्थित हुए। गुरुजी एक तख्ते पर लेटे हुए थे। शिष्य पांवों के पास बैठ गये और गुरुजी के पांव दबाने लगे। गुरु, स्वामी सर्वदानन्द ने कहा:—

"धुरेन्द्र तुम राज-गुरू हो, हो सकता है तुम्हारे शिष्य यहां आ जॉय वे तुम्हें मेरा पांव दबाते देखेंगे तो उन्हें बुरा लग सकता है।"

शिष्य बोले—"महाराज! राज गुरू तो इन्हीं चरणों के प्रताप से हूं। इन चरणों की सेवा में मेरा जीवन बीत जाय, यही मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है। यह किसी को बुरा लगे तो मैं कुछ भी छोड़ सकता हूँ, इन चरणों को नहीं छोड़ सकता; 'राजगुरुई' पर तो इसी समय लात मार दूँ।"

गुरुजी बोले—"धुरेन्द्र! राजा लोग आ सकते हैं, तुम मेरा पैर छोड़ दो।"

यह कहकर गुरूजी ने अपना पैर सिकोड़ना चाहा।

शिष्य बोले—"महाराज! इन चरणों की सेवा कोई मुझ से छुड़वा नहीं सकता।"

यह कहकर शिष्य ने गुरुजी के चरणों को थोड़ा बल से पकड़ लिया।

गुरुजी वृद्ध थे, शिष्य युवक बाल ब्रह्मचारी, मल्ल।

Scanned with CamScanner

इधर सीढ़ियों पर खड़ाऊँ जूतों की आहट आरही थी। गुरुजी अपने पैर खींचना चाहते थे, शिष्य उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे।

इतने में तीन चार राजा लोग गुरुओं के पास छत पर पहुँचे तो उन्होंने राजगुरुजी, अपने गुरुजो, को देखा कि अपने गुरुजी; वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी के चरणों की सेवा में लगे हैं। शिष्य रजवाड़े यह देखकर चकित रह गये।

प्रायः शिष्य कुछ पढ़ गये, कुछ कमाने लगे तो अपने सम्मान का ध्यान इतना बढ़ा लेते हैं कि गुरुओं को प्रणाम करने में, चरण छूने में भी लजाते हैं। थोड़े संस्कार यदि बचे रहते हैं तो प्रणाम भी इस तरह करते हैं जैसे कोई अनुचित काम संसार की आंखें बचाकर करते हों। प्रायः पुत्रों की भी यही स्थिति देखने में आती है। स्वयं कमाने लगे, सेठ बन गये। संसार सम्मान देने लगा तो सम्मान के अभिमान में अन्धे पुत्र अपने पूज्य माता-पिता की सेवा में लजाने लगते हैं। कभी काम का बहाना करते हैं। कभी नौकर-चाकर, नर्स-दाई, डाक्टर आदि की अच्छी व्यवस्था करने का बहाना करके सन्तोष करते हैं।

यहाँ तो राजगुरु बनने के सम्मान के बाद भी गुरु चरणों की सेवा में उपस्थित हैं। राजस्थान के किसी राजा ने धुरेन्द्र शास्त्री-जी से कहा—

"गुरुजी ! आपका आदेश हो जाता तो हमलोग ऐसे टहलुए सेवक पैर दबाने के लिए भेज देते, जो ऐसे सुन्दर ढंग से पाँव

Scanned with CamScanner

दाबते हैं कि पैरों की थकान चली जाती है, पीड़ा मिट जाती है; नींद आ जाती है। फिर आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी ?"

राजगुरूजी ने उत्तर दिया—

"तुम्हारे नौकरों से गुरुजी की सेवा हो जायगी, पर मेरे जीवन का कल्याण कैसे हो ? मैं श्रद्धा से इनके पैर दवाता हूं तो अन्तःकरण से स्नेह से भी विद्युत् तरंगे मेरे हृदय में समा जाती हैं। यह मेरा उपकार नौकर की सेवा से कैसे सम्भव होगा।"

उपसेवा से अपना कल्याण होता है; अपना मन निर्मल और पवित्र हो जाता है।

हमारी संस्कृति का दीक्षान्त उपदेश है—

"मातृदेवो भव, पितृदेवो भव,
आचार्यदेवो भव; अतिथि देवो भव।"

अर्थात्—माता-पिता; आचार्य तथा अतिथि आदि पूज्यों में देव भाव रखना चाहिए। ये पूज्य देवता है। इनकी सेवा करना, इनकी पूजा करना ही सच्ची देव पूजा है। कहा है—

"महतो देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति"

माता-पिता, आचार्य आदि हमारे पूज्य, मनुष्य के रूप में महान् देव हैं। ये ही हमारे सच्चे तीर्थ हैं। इन्हीं की सेवा से हम इस जीवन से तरते हैं। किसी कवि ने बहुत सुन्दर कहा है—

Scanned with CamScanner

"माँ बाप की सेवा करते जो,
उनके कष्टों को हरते जो;
वे मथुरा काशी हरद्वार;
बृन्दावन जाना क्यों जानें ?"

माता-पिता, गुरु, आचार्य, अतिथि; विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, इनकी सेवा ही सच्ची सेवा, सच्चा तीर्थ है, सच्चा पुण्य है। यों काशी, मथुरा, हरद्वार आदि तीर्थों में जाना मन बहलाना है, मन को ठगना है।

हम आज जो कुछ भी हैं, वह सब माता-पिता, गुरु, आचार्य की कृपा का ही फल है। हमारी सारी उपलब्धियों में हमारी सारी उन्नति में, बीज रूप से इन महापुरुषों की, इन देवों की, कृपा छिपी रहती है। आज हम अच्छा पैसा पैदा कर रहे हैं धनियों में, बड़े और सम्पन्न परिवारों में गिनती है, हम विद्वान् हैं, अच्छे पढ़े-लिखों में हमारी गणना है, या हम अच्छी नौकरी कर रहे हैं। सम्मान के साथ दस व्यक्तियों में एक हमको भी गिना जाता है। यह सब इन्हीं पूर्व पुरुषों की कृपा का फल है।

स्व० स्वामी समर्पणानन्दजी (पूर्व पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार) एक समय अपने साहित्य गुरु पं० शालिग्रामजी के दर्शन करने गये। उस समय तक पं० बुद्धदेवजी की ख्याति बहुत बढ़ चुकी थी। उनकी व्याख्यान शैली, वेदार्थ में उनकी सूझबूझ विचित्र-विशाली

Scanned with CamScanner

थी। शिष्य ने गुरु के चरण स्पर्श किये। गुरुजी बोले, "बुद्धदेव! तुम्हारा यश सुनता हूँ तो लगता है जैसे अपनी ही प्रतिष्ठा बढ़ा रही है।"

शिष्य ने श्रद्धावनत होकर कहा, "गुरुजी! है तो वस्तुतः आपकी ही प्रतिष्ठा।"

गुरुजी ने पुनः कहा, "बुद्धदेव! अब तो तुम इतने महान् विद्वान् बन गये हो कि मैं भी तुमसे बहुत कुछ पढ़ सीख सकता हूँ।" शिष्य ने कहा, "गुरुजी! मेरे पास जो है सो तो आपका ही है।" किन्तु इस संक्षिप्त से वार्तालाप में भी शिष्य की श्रद्धा उमड़ पड़ी और गुरु कृपा का वर्णन पं० बुद्धदेवजी विद्या-लंकार ने अपने निम्न श्लोक में किया है—

स्कन्धे निधाय यदि किञ्चिददर्शि दृश्यं;
यत्स्यात्स्वयं गुरुजनैर्नु साऽनुकम्पा।
तद् वर्णयन् यदि यशोऽपि लभेत जातु,
नो लाघवन्तु विजहाति शिशुः कदाचन॥

इसका अभिप्राय है—कोई दर्शनीय वस्तु है। उसे देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो गई है। भीड़ इतनी बढ़ गई कि पीछे वाले उस दर्शनीय वस्तु को नहीं देख पा रहे हैं। उसी भीड़ में एक पिता अपने सात आठ वर्ष के बच्चे के साथ उस दृश्य को देखने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु भीड़ में इतना पीछे है कि स्वयं ही नहीं देख पा रहा है तो बच्चा देख भी कैसे सकता है! वह तो छोटा

भी है, निर्बल भी है। पिताजी की उँगली के सहारे भीड़ के धक्कों को बचा रहा है। बाप अपनी असमर्थता को समझता है। पर उसे एक बात सूझती है. वह अपने बेटे को उठाकर अपने कन्धों पर खड़ा कर लेता है। अब पुत्र उस दृश्य को बड़े आराम से देख लेता है। पुत्र उस दृश्य का वर्णन करता है, लोग उस बच्चे की प्रशंसा करते हैं, उसके यश का गान करते हैं। नाम पिता का नहीं हो रहा है. पुत्र का हो रहा है। यश भी पुत्र का ही बढ़ रहा है, पिता का नहीं। फिर भी शिशु की लघुता तो है ही। संसार समझे या न समझे किन्तु बाप के कन्धे पर बैठे हुए इस पुत्र को समझना चाहिए—पिता की कितनी महत्ता है! कितना त्याग है !!

माता पिता तो पुत्र की उपलब्धियों को अपनी ही उपलब्धि समझते हैं। आज वृद्ध हो गये अपने माता-पिता, गुरु-आचार्य के कन्धों पर बैठकर ही तो हम ऊपर उठ सके। आज वे वृद्ध हो चले, दाँत नहीं रहे मुख पोपला हो गया, कमर टेढ़ी हो गई हाथ काँपने लगे, सारा शरीर शिथिल हो चला। हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है इनकी सेवा और वह भी अपने हाथों। नौकर भी रखें नर्स भी रखें, किन्तु वृद्धों की सेवा के सौभाग्य से अपने को वञ्चित करने का पाप न करें।

जो बीज धरती में गड़ गया, उसने अपने को मिटाने का निश्चय कर लिया तो उसमें से अंकुर निकलने लगा, अंकुर बड़ा हुआ

Scanned with CamScanner

उसमें फूल आये, सुगन्ध आई' फल आये संसार की आँखें उसी की ओर लगी हैं। कोई बीज को याद भी तो नहीं करता, किन्तु यह कृपा तो बीज की है। बीज के उपकार को भूलना कितनी बड़ी कृतघ्नता है ! हमारे कल्याण के लिए जिसने अपने को खपा दिया उसे हम भूल जाँय, यह बड़ा भारी पाप है।

जबतक पुष्प में रस था, स्वार्थी भौंरे उड़-उड़ कर मधु पीने इसी पर आकर बैठते थे ! किन्तु पुष्प में रस नहीं तो भौंरा भी नहीं आता, कैसा निकृष्ट स्वार्थ है—

कर दिया मधु और सौरभ दान सारा एक दिन।
किन्तु रोता कौन है तेरे लिए दानी सुमन ॥

माता-पिता अपने बच्चों के लिए कितने स्वार्थहीन होकर कष्ट उठाते हैं। निज में भोजन का कष्ट उठाते हैं, तन पर पूरा वस्त्र नहीं पहनते संसार के झंझट झकोरों को अपने बच्चों के पास तक भी नहीं पहुंचने देते।

ऐसे देवरूप माता-पिता की सेवा करके अपना जीवन सफल बनाना चाहिए।

आजकल फैशन का नया रोग लग गया है। आज के युवक-युवती अपने बच्चों की देखभाल का भार नौकरों पर छोड़ देते हैं, वृद्धों का भार डाक्टर, नर्स या नौकरों पर छोड़कर समझते हैं कि अपने कर्तव्य में अब कुछ बचा नहीं, सब पूर्ण हो गया,

Scanned with CamScanner

इतना ही इनका कर्तव्य है। यह भारी भूल है।

हमारे बच्चे उस जगत्पिता, जगन्माता की हमारे पास अमानत हैं। उनके पालन-पोषण का भार तो नौकरों पर डाल कर हम माता-पिता के गौरवशाली पद से वंचित हो जाते हैं।

माता कस्मात्—निर्मात्री भवति तस्मात्

पिता कस्मात्—पालयति तस्मात्

जो माता पिता निर्माण और पालन से अलग हट जाँय, वे माता-पिता नहीं रह जाते। जो पितृयज्ञ, श्राद्ध, तर्पण सेवा से अलग हट जाते हैं, वे सन्तान, पुत्र नहीं रह जाते।

प्रायः लोग जीवित माता-पिता की सेवा में उदासीन रहते हैं कई बार तो किसी किसी अभागे पापी परिवार में इन वृद्ध देवों का निरादर भी होता है। कोई-कोई नराधम, नरपिशाच अपने इन परम पूज्य वृद्धों को कटु वचन बोलते हैं, कोई गाली भी दे देते हैं उनके पेट को कोसते हैं कोई कोई राक्षस तो पुत्र नाम को कलंकित करते हुए इन पूज्यों की ताड़ना भी कर बैठते हैं। हाहन्त! क्या स्थिति हो गई जिन्हें देव समझ कर पूजना था, उनका निरादर उनका अपमान, उन्हें गाली, उनको ताड़ना बड़ा भारी दुर्भाग्य है।

Scanned with CamScanner

बड़े सौभाग्यशाली हैं वे जो—

"कुर्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्यः प्रीतिमावहन्"

के अनुसार नित्य प्यार से अपने वृद्धों की सेवा श्रद्धा पूर्वक करते हैं। यही तो श्राद्ध है। यह जीवित माता-पिता, विद्यावृद्ध, वयोवृद्धों के लिए ही सम्भव है। जो मर गये, उनके निमित्त ब्राह्मण भोज करना, उनको खाने के लिए मिल जायगा—इसलिए खीर पूड़ी खिलाना, उनको लेटने के लिए मिल जायगा, इसलिए पलंग, बिस्तरा-चद्दर तकिया देना, घोड़ा और गाड़ी, पीनस और गाय देना, सब भोलापन है। आज तो यह मृतक श्राद्ध की प्रथा सामाजिक पाप के रूप में उपस्थित हो गई है। निर्धनों को इस मृतक श्राद्ध के लिए ऋण लेना पड़ता है। समाज में इज्जत बनाने के लिए मृतक श्राद्ध में फँसे लोग कमर तोड़ कर्ज से दबते चले जाते हैं।

मृतक श्राद्ध जैसी हानिकारक, अवैदिक, अनार्ष प्रथा का प्रचलन कैसे आरम्भ हो गया, इसका कुछ बहुत निश्चयात्मक वर्णन तो नहीं मिलता। किन्तु महाभारत में वर्णित एक सन्दर्भ विचारणीय है।

अनुशासन पर्व अध्याय ९१ में युधिष्ठिर भीष्म पितामह से प्रश्न करते हैं—

"केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन् काले किमात्मकम्"

श्राद्ध किस समय से प्रचलित हुआ, किसने किस प्रकार किया?

Scanned with CamScanner

इस प्रश्न के उत्तर में भीष्म पितामह कहते है—

निमि नाम के एक तपस्वी थे। उनके एक पुत्र था उसका नाम था "श्रीमान्"। वह एक सहस्र वर्ष घोर तपस्या करके मर गया। पुत्र शोकसे व्याकुल निमि ने मृतकके लिए श्राद्ध किया, पिण्ड दान किया। फिर निमि के मनमें शोक हुआ कि यह धर्म विरुद्ध नई बात मैंने कर दी, जिसे पहले ऋषि मुनियों ने कभी किया नहीं, मुझे ब्राह्मण लोग शाप से भस्म कर देंगे—

"अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम्।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति"

अनुशासन पर्व ६१।१७

इससे पता चलता है कि पहले के ऋषि मुनि मृतक श्राद्ध नहीं करते थे।

मृतक श्राद्ध से प्रेतात्मा का उद्धार नहीं होता, इसका वर्णन तो श्रीमद्भागवतपुराण के माहात्म्य में आई हुई गोकर्ण और धुन्धकारी की कथा से ही मिल जाता हैं—

धुन्धकारी पापात्मा था, मर कर प्रेत हो गया। उसके भाई गोकर्ण ने उसके लिए श्राद्ध किया। सो भी साधारण श्राद्ध नहीं, गया में जाकर उसका श्राद्ध किया। किन्तु प्रेतात्मा धुन्धकारी प्रेत योनि से मुक्त नहीं हुआ। धुन्धकारी ने अन्त में गोकर्ण से कहा

धुन्धकारी दुःखितात्मा प्रोवाच पुरतः स्थितः ।
गया श्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥"

धुन्धकारी जो प्रेत हो गया था, गोकर्ण से दुःखित होकर कहता है कि गया में सैकड़ों श्राद्धों से भी मेरी मुक्ति नहीं होगी।

श्रीमद् भागवतपुराण के माहात्म्य में वर्णित यह कथा गवाही दे रही है कि मृतक के निमित्त से उसके उद्धार के लिए कुछ खिलाना पिलाना, पिण्डदान करना सब व्यर्थ है

भविष्योत्तरपुराण में ऋषि पञ्चमी की एक कथा आती है। धर्म भोरू स्त्रियाँ तो इस कथा को बहुत सुनाती हैं। उसमें सुमति और चन्द्रावती नाम का एक दम्पती, पति पत्नी का जोड़ा था। सुमति ने श्राद्ध किया और चन्द्रावती ने बड़ी श्रद्धा से सब व्यवस्था की, किन्तु सुमति के माता-पिता भूखे ही रह गये। मरने के पीछे बाप तो बैल बना, माता कुतिया बनी। बेटे ने श्राद्ध तो किया, किन्तु 'माता-पिता' जो उस समय कुतिया-बैल बने थे, भूखे ही पड़े रहे। पिता—जो बैल बना था, कहता है—

'किं करोमि अशक्तोऽहं भार वाहत्व मागतः"

अर्थात्—क्या करूं? मैं तो अशक्त हूँ, मुझे भार वहन करना पड़ता है और अगले श्लोक में पिता, पुनः कहता है—

Scanned with CamScanner

"वृथा श्राद्धं कृत तेन जाताऽद्य मम कष्टता ।"

अर्थात्—इसने व्यर्थ ही श्राद्ध किया, आज तो मुझे बहुत कष्ट हुआ।

यह कथा गवाही दे रही है कि श्राद्ध के नाम पर मृतकों को सुख-सुविधा पहुंचाने के लिये, उनकी मुक्ति के लिये जो ब्राह्मण भोज कराना, दान पुण्य करना, शय्या सवारी दान करना है, वह सब लेने वाले के पास ही रहता है। मृतक तो अपने कर्मों के अनुसार परमात्मा के न्याय से सुख-दुःख पाते हैं।

हम उदार हृदय और बिना किसी आग्रह के विचार करें, तो हमें विदित हो जायगा कि मृतक श्राद्ध व्यर्थ और प्रमाण हीन है।

अपने ग्रन्थों में कई जगह पिण्डदान का वर्णन आता है, किन्तु इससे मृतक श्राद्ध का समर्थन नहीं समझना चाहिये। पिण्ड का एक सर्वसम्मत अर्थ भोजन है। एक प्रसिद्ध सूक्ति है—

लांगूल चालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदर दर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु
धीरं विलोकयति चाटु शतानि भुंक्ते ॥

अर्थात्—कुत्ता अपने (पिंडद) पिंड देनेवाले, रोटी देनेवाले के सामने दुम हिलाता है, उसके चरणों पर लोटता है, धरती पर

गिरकर अपना मुंह-पेट दिखलाता है; किन्तु गजराज धीरज से देखता है, सैंकड़ों खुशामदों से खाता है। यहाँ कुत्ते के श्राद्ध से अभिप्राय नहीं है, रोटी देनेवाले से ही तात्पर्य है। गीता में अर्जुन जहाँ "लुप्त पिण्डोदकक्रियाः" प्रयोग करता है, वहाँ भी पिण्ड का अर्थ भोजन ही अधिक संगत है।

कुछ लोग समझते तो हैं कि मृतक श्राद्ध बेकार है, पितरों के लिये तो कम से कम बेकार है ही, पर फिर भी वे समाज में, बिरादरी में आलोचना के भय से इसे किये ही जाते हैं। यह भी चारित्रिक निर्बलता है। जब एक बार किसी वस्तु की निस्सारता ध्यान में आ गई, तो फिर उसे छोड़ ही देना चाहिये। समझदार व्यक्ति को मृतक श्राद्ध को छोड़ देना चाहिये।

हाँ, हमारे जो वृद्ध, माता-पिता, गुरु आचार्य, विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध जीवित हैं, हमारे पास हैं, उनकी सेवा में यथाशक्ति हमें अवश्य लगना चाहिये और बड़ी श्रद्धा से, भक्ति से उनका श्राद्ध तर्पण करना चाहिये। यही पितृ-यज्ञ है। इसके लिये मनु महाराज का निर्देश है—

"पञ्चैतांस्तु महायज्ञान् यथाशक्ति न हापयेत्"

इन पाँच महायज्ञों को यथाशक्ति त्यागना नहीं चाहिये। साल में १०-१५ दिन नहीं, बल्कि प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये—

"कुर्यादहरहः श्राद्धम् ।"

—०—

Scanned with CamScanner

* महर्षि वचन *

'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ाने हारे, पितर जो माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी।

पितृयज्ञ के दो भेद हैं, एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है। श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम् जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय, उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है।

और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणाम्' जिस-जिस कर्म से तृप्त, अर्थात् विद्यमान माता पिता आदि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिए हैं मृतकों के लिए नहीं।"

—सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

Scanned with CamScanner

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज के नियम

१ —सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर हैं।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४ - सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम सब स्वतंत्र रहें।

Scanned with CamScanner

आचार्य श्री उमाकान्त उपाध्याय जी की अन्यपुस्तकें

- श्रावणी उपाकर्म
- भगवान् कृष्ण
- मूर्ति पूजा समीक्षा
- अर्थ शौच
- आर्य समाज का परिचय
- वेदों में गो रक्षा या गो वध
- हंसामत की मिथ्या वाणी
- कम्युनिष्टों के मोर्चे पर स्वामी दयानन्द
- वेदों में नारी

प्राप्ति स्थान :

आर्य समाज, कलकत्ता

१६, विधान सरणी, कलकत्ता-६

Scanned with CamScanner

वेद शास्त्र का कहना

(श्राद्ध)

तर्ज : सावन का महिना......

वेद शास्त्र का कहना, जीवित से नाता जोड़ ।
मृत पितरों का श्राद्ध, करना अब दे तू छोड़ ।। टेक ।।

सत्य को धरना श्रद्धा कहावे, श्रद्धा से किया जाए, श्राद्ध कहावे ।
होता जीवित का श्राद्ध, मुर्दे का करना छोड़ ।।१।। वेद शास्त्र.....

जीयत पिता से दंगम-दंगा, मर जावे तब भेजे तू गंगा ।
जीवित की सेवा कर, मृतकों से नाता तोड़ ।।२।। वेद शास्त्र.....

जीयत पिता को तो घूंसा लगाए, मर जाने पर खीर खिलाए ।
क्यों उल्टे मार्ग चला है, सत्पथ पर खुद को मोड़ ।।३।। वेद शास्त्र..

खीर खिलाकर पंडे जी को, ऐसा समझता पहुँची पितर को,
समझा क्या लैटर बॉक्स, पण्डे का पेट बेजोड़ ।।४।। वेद शास्त्र.....

धर्मधर आर्य का कहना यही है, वैदिक श्राद्ध का करना सही है ।
बाकी सब भ्रम है, इनको अब दे तू छोड़ ।। ५ ।। वेद शास्त्र.....

Scanned with CamScanner